साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 6, अंक– 6, जून– 2024

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 6, अंक– 6, जून– 2024

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष,

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

संपादक

डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

सहयोगी प्राध्यापक,

वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

शहादा, जिला– नंदुरबार

सह–संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

सह–संपादक

प्रो. सुनील गुलाब पानपाटील

कानूनी सलाहकार

एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली

परामर्श मंडल

प्रो. अर्जुन चव्हाण
भूतपूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर

प्रो. सुनिल बाबुराव कुलकर्णी
निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली
एवं
निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी)
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
आगरा,
(हैदराबाद केंद्र)

एम. नधीरा शिवंति
हिंदी अध्यापिका,
स्वामी विवेकानंद
सांस्कृतिक केंद्र,
कोलंबो, श्रीलंका

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 6, अंक– 6, जून – 2024

PEER REVIEW COMMITTEE

डॉ. अर्चना पत्की, सेलू
डॉ. लूनेश कुमार वर्मा, छछानपैरी, छत्तीसगढ़
डॉ. मिनाक्षी सोनवणे, नागपुर
डॉ. राजश्री लक्ष्मण तावरे, भूम, (महाराष्ट्र)
डॉ. मल्लिकार्जुन एन. उजीरे, (कर्नाटक)
डॉ. राहुल कुमार, झारखंड
डॉ. संदीप किर्दत, सातारा
डॉ. वनिता शर्मा, दिल्ली
डॉ. भावना कुमारी, रांची
डॉ. एकलारे चंद्रकांत, मुखेड, महाराष्ट्र
डॉ. अनामिका जैन, मुजफ्फरनगर
डॉ. मौसम कुमार ठाकुर, गोड्डा, झारखंड
डॉ. रौबी, अलीगढ़
डॉ. अमृत लाल जीनगर, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)
डॉ. प्रकाश आठवले ऊरुण इस्लामपुर,
डॉ. राम आशीष तिवारी, छत्तीसगढ
डॉ. दीपक प्रसाद, रांची
डॉ. रामप्रवेश त्रिपाठी, देवरिया,
डॉ. परशुराम मालगे, मंगलुरू, (कर्नाटक)
डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा, बुलंदशहर
डॉ. विजय वाघ, सेनगाँव, (महाराष्ट्र)
डॉ. रेणुका चव्हाण, नासिक (महाराष्ट्र)
डॉ. लक्ष्मण कदम, मुदखेड (महाराष्ट्र)
डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार, पटना
डॉ. पवार सीताबाई नामदेव इंदापुर
डॉ. टी. लता मंगेश, तिरुपति
डॉ. आशीष कुमार तिवारी, छतरपुर (मध्य प्रदेश)
डॉ. राम सिंह सैन, राजस्थान,
डॉ. गोरखनाथ किर्दत, उरुण–इस्लामपूर
डॉ. वैशाली सुनील शिंदे, सातारा
डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता, गंगापुर सिटी
डॉ. संजीव कुमार, दरौली, सिवान
डॉ. सचिन जाधव, सिंदखेडा
डॉ. के शक्तिराज, यल्लारेड्डी, तेलंगाणा
डॉ. सुरेन्द्र कुमार, रतिया
डॉ. शीतल बियाणी, वाळूज
डॉ. नीलम धारीवाल, उत्तराखंड
डॉ. नीतू रानी, पंजाब
डॉ. सरोज पाटिल, बेतुल, म.प्र.
डॉ. सुनिल पाटिल, चेन्नई
अर्जुन कांबले, बेलगावी, कर्नाटक
ममता शत्रुघ्न माली, मुंबई
डॉ. देविदास जाधव, अर्जापूर, महाराष्ट्र
डॉ. सोनकांबले अरुण वाई,
सुषमा माधवराव नरांजे, भंडारा (महाराष्ट्र)
डॉ. श्रीलेखा के. एन., केरल
अजीति महेश्वर मिश्रा, मुंबई, (महाराष्ट्र)
वंदना शुक्ला, छतरपुर (मध्य प्रदेश)
प्रा. तेलसंग हनमंत भिमराव (महाराष्ट्र)
डॉ. मंगल कोंडिबा ससाणे, बारामती (महाराष्ट्र)

स्वामित्व : प्रधान संपादक, साहित्याकाश मासिक पत्रिका

प्रकाशक : डॉ. संतोष कांबळे

प्रधान संपादक, : डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-mail- sahityaakash24@gmail.com

Website- https://www.sahityaakash.in

*'साहित्याकाश' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं । अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है ।

**'साहित्याकाश' पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल हैदराबाद न्यायालय के अधीन होंगे ।

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

M.A. (History, Hindi), M.Lib. & I.Sc., M.Phil., PGDCA., PGDLAN., PGDT., UGC-NET, Ph.D.-LIS., (Ph.D.-Hindi)

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-Mail- santosh.kamble@sahityaakash.in / shreyashju@yahoo.co.in Mobile No.- 8125981194

Profile Link- DBHPSBEd (dbhpsabhabedhyderabad.com)

संपादक

डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

M.A., Ph.D.

सहयोगी प्राध्यापक, वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शहादा, जिला– नंदुरबार

E-Mail- ajit.chavan@sahityaakash.in / chavan.ajit2@gmail.com **Mobile No.- 9422262445**

Profile link- CV-Dr.-Chavan-Ajit-Chunilal.pdf (sspmvnc.ac.in)

सह–संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

M.A., Ph.D

हिंदी विभाग प्रमुख

पूज्य साने गुरुजी विद्या प्रसारक मंडल का कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय शहादा जिला नंदुरबार महाराष्ट्र

E-Mail- contactus@psgvpasc.ac.in / gautamkuwar53@gmail.com

Mobile No.- 84118 28448

Profile Link Microsoft Word - Kuwar sir Resume (psgvpasc.ac.in)

प्रो. सुनील गुलाब पानपाटील

M.A., Ph.D (SET)

कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महिला महाविद्यालय, नंदुरबार

E-Mail- info@tessmmndb.org.in / sgpanpatil@gmail.com

Mobile No.- 9860235508

Profile Link- teaching-staff-list-2022-23.pdf (tessmmndb.org.in)

कानूनी सलाहकार

एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

B.A., LL.B

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली, **E-Mail-** rajesh.shagun@gmail.com **Mobile No.-** 981144676

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 6, अंक– 6, जून – 2024

अनुक्रम

अ. क्र.	साहित्याकाश वर्ष– 1, खंड– 6, अंक– 6, जून – 2024		पृ.सं.
1.	संपादकीय	डॉ. संतोष कांबळे प्रकृति एवं हम	03–04
2.	लेखक शोध आलेख शीर्षक	प्रा. वैशाली पराग चारथल लघुकथा की आधुनिक युग में प्रासंगिकता	05–09
3.	लेखक शोध आलेख शीर्षक	डॉ. सोनकांबले अरुण अशोक “राही मासूम रजा के उपन्यासों का भाषावैज्ञानिक शैलीविज्ञान का विश्लेषण”	10–13
4.	लेखक शोध आलेख शीर्षक	रंजना शर्मा “रज़्ज़ब के साहित्य में सामाजिक चेतना”	14–20
5.	लेखक शोध आलेख शीर्षक	डॉ. के. माधवी “क्या मुझे खरीदोगे”–स्त्री अस्तित्व का संघर्ष	21–27

6.	लेखक	डॉ. सुमनलता	28–33
	शोध आलेख शीर्षक	तेलुगु "पदकविता पितामह" ताल्लपाक अन्नमाचार्य के श्रृंगार संकीर्तन	
7.	लेखक	शीतल गुप्ता	34–35
	कहानी का शीर्षक	एक पैकेट मूंगफली	
8.	लेखक	डॉ. लूनेश कुमार वर्मा	36–37
	कविता का शीर्षक	देश–प्रेम (हाइकु)	
9.	लेखक	डॉ. सुमन लता रुद्रावझला	38–39
	कविता का शीर्षक	बीजयान	
10.	लेखक	डॉ. सुमन लता रुद्रावझला	40–41
	कविता का शीर्षक	दाम और मोल	
11.	लेखक	सुश्री पुनम	42–43
	कविता का शीर्षक	भारत की जान हिंदी	

साहित्याकाश

संपादकीय

प्रकृति एवं हम

भले ही आधुनिक युग वैज्ञानिक युग के नाम से जाना जाता है परंतु मानव जीवन के मूल में प्रकृति ही है । प्रकृति के द्वारा ही मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति संभव है अर्थात् जल, वायु, भोजन, आवास आदि की सुविधाओं की पूर्ति में प्रकृति अपना अहम योगदान प्रदान करती है । प्रकृति की शाश्वतता द्वारा हमें नवोन्मेषी विचारों की प्राप्ति होती है ।

प्रकृति से मानव का चिरकालीन संबंध रहा है । दोनों ही एक–दूसरे के पूरक कहलाते हैं । हमारा प्यारा भारतवर्ष कृषि प्रधान राष्ट्र है जिसे नदियों का देश भी कहा जाता है । प्रकृति मानव जीवन की न केवल सहचरी है बल्कि इसी पर मानव जीवन का अस्तित्व कायम है । प्रकृति को साहित्य में भी जीवन का आधार माना जाना प्रकृति के महत्त्व को उद्घाटित करता है । आदिकाल से आधुनिक काल तक रचित प्रत्येक काल की रचनाओं में प्रकृति को बहुतायत से समावेश होना प्रकृति के महत्त्व को स्पष्ट करता है । रचनाएँ भले ही किसी भी भाषा एवं बोली में अथवा विधा में रचित हो प्रकृति इसके केंद्र में निहित होती है ।

प्रकृति की महिमा का व्याख्यान हमें संस्कृत साहित्य के महाकवि माने जाने वाले कवि कालिदास द्वारा रचित नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के मंगला चरण में शिव वंदना के द्वारा प्रकृति के सौंदर्य वर्णन द्वारा किया गया है यथा–

"या सृष्टि सृष्टराद्या, वहति विधिहुतं याहविर्या च होत्री,
ये द्वे काल विधतः श्रुतिविषयगुणा या स्थिताव्याप्त विश्वम्!
यामाहः सर्व बीज प्रकृतिरिति यहा प्राणिनः प्राणवन्त
प्रत्याक्षाभिः प्रपन्नस्तनभिरवत् वस्ताभिरष्टभिरिशः ।।"

आधुनिक युग के छायावाद काल की यदि बात की जाए तो यह काल अधिकांशतः प्रकृति को आधार बनाकर रचनाएँ करने वाला काल मान जाता है इस काल के प्रमुख कवि एवं

रचनाकार माने जाने वाले चारों रचनाकार– जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी वर्मा प्रकृति को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं । सुमित्रानंदन पंत को तो प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है । जयशंकर प्रसाद ने कालजयी रचना 'कामायनी' में प्रकृति को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखा है–

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाह
एक पुरूष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह ।"

प्रस्तुत पत्रिका का प्रकाशन जून माह में किया जा रहा है जो कि प्रकृति के प्रति प्रत्येक जन की जिम्मेदारी को दर्शाता है । 5 जून 'पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाये जाने के पीछे पर्यावरण की स्वच्छ एवं निर्मल बनाये रखने तथा प्रकृति के संरक्षण को ध्यान में रखकर किया जा रहा है । प्रकृति और मानव का साहचर्य हमारी सृष्टि के प्रारंभ से रहा है । साहित्य लेखन हेतु भी प्रकृति द्वारा मनमोहक दृश्य प्रदान किए हैं । सृष्टि निर्माण हेतु आवश्यक पंचतत्व द्वारा मानव सृजन मानव के जीवन में प्रकृति के महत्व को और अधिक बढा देता है ।

प्रकृति का कण–कण अपनी अलग आभा से युक्त है एवं अत्यंत मनमोहक है । इक्कीसवीं सदीं में रचित समूचे साहित्य में प्रकृति–चित्रण एवं पर्यावरण चेतना की केंद्रित किया गया है ।

इस पत्रिका के संपादन का परम उद्देश्य समस्त पाठकों एवं समाज को प्रकृति के महत्त्व से समय रहते अवगत कराना है ताकि हम सभी अपने–आने वाली पीढ़ी को स्वच्छ एवं हरित वातावरण अथवा पर्यावरण प्रदान कर प्राकृतिक आपदाओं से बचाव कर सके । प्रकृति को बचाये रखना एवं वातावरण को स्वच्छ रखने हेतु अधिक वृक्षारोपण करना हम सभी का अहम कर्तव्य है जिसके लिए हमें सजग एवं कर्मठ होकर प्रकृति को बचाना चाहिए ।

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

लघुकथा की आधुनिक युग में प्रासंगिकता

प्रा. वैशाली पराग चारथल
नागपुर
charthal.vaishali1830@gmail.com
मो.क्र.8554999464

आज का दौर लघुकथा का है। नए प्रयोग, नए रंग–रूप के साथ हमें लघुकथाएं पढ़ने को मिल रही हैं। इसे लिखना आसान नहीं है। इसे इसके नियमों के साथ प्रस्तुत करना कठिन तो नहीं, हां एक मुश्किल काम जरूर है। जिसने इसे जितना साधा, तपाया, उसने उतनी ही उत्कृष्ट लघुकथा साहित्य को दी है।

प्रासंगिक का तात्पर्य एक पता लगाने योग्य, महत्वपूर्ण, तार्किक संबंध से है। किसी स्थिति या अवसर के लिए उपयुक्तता है। साहित्य का उद्देश्य आदर्श निर्माण करना है । प्रत्येक साहित्यकार समाज को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर ले जाने के लिए साहित्य सृजन करता है । इक्कीसवीं सदी के हिंदी लघुकथाकारों ने अपने लघुकथा साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है ।

लघुकथा एक छोटी कहानी नहीं है। यह कहानी का संक्षिप्त रूप भी नहीं है। यह विधा अपने एकांगी स्वरुप में किसी भी एक विषय, एक घटना या एक क्षण पर आधारित होती है। आधुनिक लघुकथा अपने पाठकों में चेतना जागृत करती है। यह किसी भी चुटकुले या व्यंग्य से भी पूरी तरह अलग है।

जीवन एक अविरल धारा है जो बहते हुए आगे बढ़ती जाती है, जिसमें बहुत कुछ पीछे छूट जाता है, तो बहुत कुछ नया जुड़ता भी जाता है। वस्तुतः यही है जीवन की विकास–यात्रा। यह सही है प्रत्येक विधा पर अपने समय, तत्कालीन राजनीति, सामाजिक परिवर्तन, मानव–मनोविज्ञान इत्यादि का प्रभाव पड़ता है, लघुकथा भी इसका अपवाद नहीं है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। यदि हमें अपने देश, समाज, परंपरा संस्कृति को समझना है तो उसके साहित्य के अंदर झांकना पड़ेगा। साहित्य समाज का प्रतिबिंब नहीं अपितु उन्नायक है और समाज साहित्य के लिए महत्वपूर्ण भावभूमि है। साहित्य में समाज को प्रेरित करने एवं उसे सही दिशा प्रदान करने की असीम, अनंत शक्ति होती है। इक्कीसवीं सदी में समाज के सभी स्तरों पर जो तीव्रता से बदलाव आया है । उसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी व्यापक रूप से परिलक्षित होता है।

साहित्य का समाजशास्त्र से घनिष्ठ संबंध रहा है। जिसका मूल कारण दोनों के मूल में मनुष्य का होना है। समाजशास्त्र का कार्यक्षेत्र समाज और उसके सभी अंग हैं। इसी कारण समाजशास्त्र साहित्य से जुड़ जाता है, तो वहीं दूसरी ओर साहित्य भी सामाजिक संदर्भों से ही जुड़कर अपना संवेदनात्मक आकार पाता है।

लघुकथा के इतिहास पर विचार किया जाए तो उसका प्रारंभिक अस्तित्व वेद की कथाओं में देखा जा सकता है, जिन्हें हम यम–यमी, पुरुरवा– उर्वशी परिसंवाद कहते हैं और जिनका उपयोग उपरोक्त स्थापना के लिए हुआ है। व्रतकथा, लोकसंग्रह, क्षेमेंद्र व्रतकथा, मंजरी और सोमदेव व्रतकथा आदि पंचतंत्र हितोपदेश ,जातक कथा का महत्व भी अपनी श्रृंखला का तथा विशिष्टता में उल्लेखनीय स्थान रखती है। आठवें दशक के पहले लघुकथा साहित्य के हाशिए पर भी नहीं थी। साहित्य की मुख्य धारा में लघुकथा का कोई जिक्र नहीं था। उस समय के लघुकथा लेखक पूर्णतः उपेक्षित ही रहे।

"20वीं सदी के आठवें दशक में लघुकथा का आरंभ माना जा सकता है।"[1] अगर हम लघुकथा की गंगोत्री तक की यात्रा करना चाहे तो गंगोत्री की जगह बोध, नीति, उपदेश या लोक परंपरा की लोककथा ही मिलेगी। बहुत बाद में यह धारा गद्य –गीतों व भाव कथाओं से होती हुई संस्मरण, रेखाचित्र , चुटकी, परिहासकथा, प्रेरक प्रसंग तक आई और आगे वह सामाजिक यथार्थ और व्यंग्य के औजार से लैस हुई। इस लंबी विकास यात्रा में विभिन्न मोड़ आए और यह बोध, नीति, उपदेश ,दृष्टांत ,भाव कथाएं, गद्य गीत, प्रेरक प्रसंग, घटना कथा , लोककथा, संस्मरण, रेखाचित्र परिहास कथा, छोटी कहानी, मिनी कहानी और और अन्य कई नामों से जानी जाने लगी।

"परंपरा को ढूंढते वक्त यह प्रश्न भी आया कि हिंदी की पहली लघुकथा कौन– सी है। हालांकि यह कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं था, फिर भी परंपरा को जानने के लिए इस प्रश्न को अहम बना लिया गया। माधवराव सप्रे की लघुकथा, सुभाषित रत्न, छत्तीसगढ़ मित्र (बिलासपुर) में 1901 में प्रकाशित हुई। उनकी ही एक कथा रचना जिसे हिंदी की प्रथम कहानी भी माना जाता है, 'एक टोकरी भर मिट्टी', 1905

में प्रकाशित हुई। चूंकि यह छोटी कथा रचना है, अतः इसे हिंदी लघुकथा माना जाने लगा। माखनलाल चतुर्वेदी की ,संरक्षण, 1911, छबीले लाल गोस्वामी की लघुकथा ,विमाता, सरस्वती पत्रिका में सन 1915 में प्रकाशित हुई। पदुमलाल पन्नालाल बख्शी की ,झलमला, 1916 को भी हिंदी की पहली लघुकथा मानने का आग्रह किया गया। काल की दृष्टि से देखा जाए तो माधवराव सप्रे की लघुकथा ,सुभाषित रत्न, ही पहली हिंदी लघुकथा सिद्ध होती है और आधुनिक लघुकथा की अवधारणा की दृष्टि से देखा जाए तो पदुमलाल पन्नालाल बख्शी की रचना, झलमला, (1916) पहली लघुकथा सिद्ध होती है।"[2]

सुप्रसिद्ध लेखक आचार्य जगदीश चंद्र मिश्र के कई लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुए– पंचतत्व, उड़ने के पंख, मिट्टी के आदमी, मौत की खोज ,खाली भरे हाथ और माणिक मोती जो लघुकथा साहित्य में अहम रचनात्मक देन है।

इक्कीसवीं सदी की कुछ महत्वपूर्ण लघुकथा संग्रहों की चर्चा यहां आवश्यक है। इन संग्रहों में मोहभंग, (कृष्ण कमलेश) ,भीड़ में खोया आदमी, और ,राजा भी लाचार है, (सतीश दुबे) पेट सबके है (भगीरथ), तीन न तेरह (पृथ्वीराज अरोड़ा), मृगजल (बलराम) मस्तराम जिंदाबाद (कमलेश भारतीय) सरसों के फूल (बलराम अग्रवाल) जंगल में आदमी (अशोक भाटिया) अभिप्राय व फंगस (कमल चोपड़ा) मेरी बात तेरी बात (मधुदीप) डरे हुए लोग तथा ठंडी रजाई (सुकेश साहनी), पारस दासोत, चेतना भाटी, मिथिलेश अवस्थी, सुदर्शन भाटिया, जसबीर चावला , इत्यादि लघुकथा लेखक प्रमुख है। बलराम अग्रवाल की लघुकथाएँ एक और व्यंजना शक्ति से उत्पन्न व्यंग के कई संदर्भ निर्मित करती है तो हास्य–व्यंग्य का तेवर और मिजाज भी दर्शाती है।

सुकेश साहनी का रचना संसार मध्यवर्ग की प्रवृत्तियां वैचारिकता एवं भावनाओं को व्यक्त करता है। मध्यमवर्गीय मानसिकता व पाखंड को उजागर करने में डॉक्टर दुबे का कोई सानी नहीं। वे सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर भी व्यंग्य की मार करते हैं। उनकी रचना 'संस्कार' लघुकथा का उत्कृष्ट उदाहरण है। लघुकथाकार की हर रचना आकार की दृष्टि से लघु है, परंतु इसमें समुद्र–सी अथाह गहराई है ।

"पत्र पत्रिकाओं का दिनोंदिन निखरता डिजिटल स्वरूप उपलब्धि के रूप में ही देखा जाना चाहिए। ,फेसबुक, तमाम साहित्यिक विधाओं के साथ लघुकथा के लिए भी एक सशक्त मंच के रूप में उभरा है। आज तमाम फेसबुक ग्रुप उपलब्ध है जिनके हजारों की संख्या में सदस्य हैं और जहां लघुकथा लेखन के गुर सिखाने से लेकर उच्चस्तरीय लघुकथाएं हर रोज प्रकाशित करने का अभियान जारी है। बड़ी

संख्या में व्हाट्सएप ग्रुप भी उपलब्ध लघुकथा के प्रचार–प्रसार का माध्यम बने हैं। छोटी होने के कारण लघुकथाएं आम जन के व्हाट्सएप मैसेजेस में भी अपना स्थान बना चुकी हैं। यह लघुकथा के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है।इसके अतिरिक्त समकालीन लघुकथा के विचार एवं रचना पक्ष की अव्यावसायिक ब्लॉग पत्रिकाएं एवं तमाम वेबसाइट्स भी लघुकथा की लोकप्रियता को दर्शाती है ।"[3]

आज पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक लघुकथाओ ने पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित किया है। लघुकथा का आकार छोटा या बड़ा हो सकता है, पर उसकी क्षमता अनंत है । अपनी बात को बहुत कम शब्दों में कह देने की अद्भुत क्षमता ने इसे आज सफल एवं प्रसिद्ध बनाया है।

आज का समय कम से कम समय में ज्यादा फायदा पहुंचाने वाली सोच का है। लघुकथा बहुत कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कह सकती है। एक लघुकथा को एक उपन्यास में भी बदला जा सकता है या एक उपन्यास को एक लघुकथा में संक्षिप्त करके भी अपनी बात कही जा सकती है। सामाजिक विषयों को दर्शाने का अद्भुत बेमिसाल तरीका है लघुकथा, जो अपनी बात बहुत मारक तरीके से कह सकती है । ऐसी कई लघुकथाएं हैं, जो लोगों के जहन में पूरी की पूरी उतर जाती है।

हिंदी साहित्य में लघुकथा नवीनतम् विधा है। लघुकथा का प्रभाव गहरा और मारक क्षमता अचूक है। यह कमान से छूटे तीर अथवा बंदूक से निकली गोली की भांति लक्ष्य पर सीधा प्रहार करती है। इसी का परिणाम है कि आज पाठक जब पत्रिका खोलता है तो सबसे पहले लघुकथा पढ़ता है, फिर कहानी और अंत में उपन्यास। इस तरह आज लघुकथा प्रिंट मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करवा रही है। मधुदीप के शब्दों में वर्तमान लघुकथाएँ आम आदमी की जिजीविषा को स्वर प्रदान कर रही हैं । गंभीर व सचेत लघुकथाकारों ने लघुकथा को स्थापित करने और अपेक्षित स्थान दिलवाने के लिए भरपूर प्रयास किया है । फलस्वरुप आज यह हिंदी साहित्य में अपना पृथक अस्तित्व एवं अहम स्थान बनाने में सफल है।

सारांश :–

हर लघुकथाकार अपनी प्रतिभा से लघुकथा लिखता है लेकिन उसकी कलम वहाँ सक्रिय हो उठती है जहाँ परिस्थितियाँ ठीक नहीं होती , जिन स्थितियों के केंद्र में पीड़ा, शोषण, अत्याचार होता है । आजादी के बाद हर जगह बढ़ती विसंगतियों को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्यकार के पास लघुकथा ही एकमात्र प्रभावी साधन के रूप में उभरता है । जैसे– जैसे परिस्थितियाँ विकट होती गई वैसे–वैसे साहित्य

में लघुकथा का रूप अधिक प्रखर होता गया । हम अपने रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी बातों को लघुकथा के माध्यम से अधिक स्पष्ट तरीके से तथा आसानी से दूसरों तक पहुँचा सकते हैं ।

लघुकथा की विकास यात्रा को आगे बढ़ाने में कई लेखकों का योगदान था। तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे व सातवे दशक में लघुकथा के कई संग्रह प्रकाशित हुए उनका लेखा–जोखा जानना इसलिए भी जरूरी है कि हिंदी साहित्य में लघुकथा की एक समृद्ध परंपरा रही है।

आधुनिक युग के लेखक के पैनेपन ने लघुकथा के प्रभाव को और भी द्विगुणित किया है। मेरा मतलब लघुकथा के शिल्प, शैली, विषय आदि से है। इस दृष्टि से लघुकथा की प्रासंगिकता और भी उभर कर आई है, क्योंकि रचना उसके स्वरूप और आकार के बल पर प्रसिद्धि नहीं पाती, बल्कि पाठकीय प्रभाव उसे प्रसिद्धि दिलाता है।

निरंतर विकास लघुकथा ही नहीं किसी भी विधा की जीवन्तता और सामर्थ्य का परिचायक है। लघुकथा के स्वरूप के परिवर्तन, नवीन प्रवृत्तियों और उपलब्धियों पर गौर किया जाना आज और भी आवश्यक हो गया है।

अनेक अवरोधों और चुनौतियों को पार कर लघुकथा वर्तमान में एक समर्थ रूप रचना लेकर गद्यात्मक साहित्य में अपना वर्चस्व स्थापित करने में पूरी तरह सफल हो रही है।

संदर्भ संकेत :

1.भगीरथ परिहार, हिंदी लघुकथा के सिद्धांत, पृ.सं.– 1

2.भगीरथ परिहार, हिंदी लघुकथा के सिद्धांत, पृ.सं.– 3

3. डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिंदी लघुकथा: प्रासंगिकता एवं प्रयोजन, पृ.सं.– 69

"राही मासूम रजा के उपन्यासों का भाषावैज्ञानिक शैलीविज्ञान का विश्लेषण"

डॉ. सोनकांबले अरुण अशोक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
किसन वीर महाविद्यालय, वाई
मो.नं–9503007853

शोध सारांश

भाषाविज्ञान भाषा का विश्लेषण करता है। भाषा एवं भाषिकी का अध्ययन करते समय इनके सिद्धांतों का अनुप्रयोग होता है। सैद्धांतिक भाषाविज्ञान का व्यवहार में प्रयोग जब किया जाता है तब उसे अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान नाम से जाना जाता है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की शाखाओं में शैलीविज्ञान का स्थान विशिष्ट है। शैलीविज्ञान के मुख्यतः तीन प्रकार हैं– एक भाषावैज्ञानिक शैलीविज्ञान, दूसरा पाठपरक शैलीविज्ञान, तीसरा संरचनात्मक शैलीविज्ञान। शैलीविज्ञान के विश्लेषण में भाषावैज्ञानिक शैलीविज्ञान महत्वपूर्ण है। भाषावैज्ञानिक शैलीविज्ञान में ध्वनिगत चयन अनुप्रयोग की दृष्टि से लेखक की वृत्ति का व्यावहारिक विश्लेषण है। मानव मुख से उच्चरित आवाज को ध्वनि या स्वन कहते हैं। भाषा का अध्ययन ध्वनि के माध्यम से ही किया जाता है। प्रस्तुत आलेख राही मासूम रजा कृत –आधा गाँव, टोपी शुक्ला और हिम्मत जौनपुरी उपन्यासों में स्वरावृत्ति के अनुप्रयोग पर आधृत है।

कूटशब्द – भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान, राही मासूम रजा, आधा गाँव, टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी, आवृत्ति और स्वरावृत्ति आदि।

स्वरावृत्ति :

एक वाक्य या पद में एक स्वर की अनेक बार आवृत्ति हो उसे स्वरावृत्ति कहा जाता है राही के उपन्यासों में इसकी आवृत्ति अनेक बार हुई है। जिससे अभिव्यक्ति में एक प्रकार से सघनता आई है। हिंदी के अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ आदि स्वरों का राही मासूम रजा कृत आधा गाँव, टोपी शुक्ला

और हिम्मत जौनपुरी उपन्यासों में प्रयोग होकर एक प्रकार से संगीतात्मकता के वर्णन से पाठ में रोचकता दिखाई देती है।

*** आधा गाँव:**

* "रब्बन– बी जवाब देने ही वाली थी कि कुबरा देने ही वाली थी कि कुबरा आ गयी और आते ही बोली, "हमरा माथा त उहे दिन उनका रहा बा 'जी', जेह दिन हम ओको अग्गू भैया के दालान में देखा कि अकेली बैठी है। ('अ' की आवृत्ति पृ.सं. 121)

* "उन्हें इतना तो होश रहा कि उन्होंने गाडी को गाँव की तरफ मोडा।" ('ओ' की आवृत्ति, पृ.सं. 150)

* "हम्माद मियाँ का जी तो चाहा कि बुढ़िया जुलाहिन का गला घोंटदें, जिसने उसकी माँ बनकर उन्हें गंगौली में आँख उठाकर जीने का हक नहीं दिया। ('उ' की आवृत्ति, पृ.सं. 182)

* "छह बरस में गंगौली काफी बदल गयी थी।" ('ई' की आवृत्ति पृ. सं.218)

* "गाँव में और किसी से तो उसका मिलना–जुलना था नहीं । इसलिए वह अपनी माँ ही के सामने बिठलाकर पाकिस्तान के खिलाफ़ तकरीरे कसने लगा। ('इ' की आवृत्ति, पृ.सं.238)

* "जनाना इमाम बाड़े में मिट्टी के तेल का लैंप एक ताक में बैठा सैदानियों के इंतजार में ऊँघ रहा था।" ('ऐ' की आवृत्ति पृ. सृ.296)

* "हकीम साहब को शिकायत यह थी कि सारे नौजवन जो जबरदस्ती लाम पर भेजे जा रहे है, तो खेत कौन करेगा और जिन काश्तकारों से पुरानी शहर पर लगान वसूल करने के लिए बार–बार बकाया लगान का दावा करना पडता हो, उनसे ड्योढा और दूना लगान हासिल करना नामुमकिन है ('औ' की आवृत्ति, पृ.सं. 143)

*** टोपी शुक्ला :**

* "टोपी शुक्ला बहुत ही यार टाइप के लोग थे। अपने उसूलों के भी बड़े पक्के थे और उनका सबसे बड़ा उसूल यह था कि दोस्ती में उसूल नहीं देखे जाते।' ('उ' की आवृत्ति, पृ.सं.09)

* "यह सुनकर उसको ढांढस बँधा कि अगर लखनऊ का लखनऊ भी दादी की पार्टी का हो तो कोई फिक्र नहीं क्योंकि लखनऊ दूर है।" ('ऊ' की आवृत्ति पृ.सं. 20)

* "यह सुनते ही सारा मजमा उसकी तरफ लपका। वह भागा। दूसरी तरफ से एक सरदारजी आ रहे थे।" ('आ' की आवृत्ति पृ.सं. 37)

* "बैठिए, बैठिए। "टोपी ने कहा, मैं आपके जगह पर बैठ जाता हूँ।' ('ऐ' की आवृत्ति पृ.सं.75)

* "अवश्य भेजा था। यदि सिस्टर आलेमा को यह कहने का अधिकार है कि मैं भाई मेरा मतलब है जैदी साहब की बीवी से लव करता हूँ तो मुझे यह कहने का अधिकार है कि मैं उनसे लव करता हूँ।" ('अ' की आवृत्ति, पृ.सं.67)

* "टोपी जिस डिब्बे में बैठा उसमें बड़ी भीड़ थी। शायद भीड ही हिन्दुस्तानी रेलों की सबसे बड़ी पहचान है। टोपी ने यूनिवर्सिटी वाली काली शेरवानी पहन रखी थी।" ('ई' की आवृत्ति पृ.सं.72)

* "इसलिए उनकी बात करनी पड़ी। शबनम सिस्टर आलेमा के बिना समझ में न आती।" ('ए' की आवृत्ति पृ.सं.97)

* "साहित्य के इतिहास को उसने दिल–हि–दिल में दुहरा डाला।" ('इ' की आवृत्ति 4 बार पृ.सं.94)

* "इंशा अल्लाह और माशा अल्लाह और सुबहान अल्लाह के नीचे बात नहीं करते थे।" ('औ' की आवृत्ति, पृ.सं. 14)

*** हिम्मत जौनपुरी :**

* "वह उसी समय मरे हों या न मरे हों परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि वह भी उसी दिन मरे जिस दिन बेगम मरी" ('ओ' की आवृत्ति, पृ.सं. 19)

* "यह थी सात साढे सात बरस की वह सुक्कन जो बड़ी होने पर अपनी खाला बेगम की तरह सकीना बीबी कही गई।" ('ई' की आवृत्ति, पृ.सं. 26)

* "कई दरबारों से नवबहार का बुलावा आ चुका था।" ('आ' की आवृत्ति, पृ.सं. 48)

* "ठीक है।" सुक्कन ने फैसला कर लिया। "जो अल्लाह कोई मंजूर हैं, ई हे हो जाये।" ('ऐ' की आवृत्ति, पृ.सं. 75)

* "मुझे क्यों समझा रहे हो।" उसने बात काटी। "जमुना मेरा मतलब है कि जुबैदा को समझना। ('उ' की आवृत्ति, पृ.सं. 104)

* "उस दिन 'आरजू' को यह तमाम बातें मालूम नहीं थी।" ('ऊ' की आवृत्ति, पृ.सं.27)

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि भाषाविज्ञान की महत्वपूर्ण इकाई ध्वनि के विश्लेषण में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की शाखा शैलीविज्ञान में ध्वनिगत चयन में स्वरावृत्ति का राही के उपन्यासों में इसका अनुप्रयोग हुआ है। स्वरावृत्ति से मानव मन–मस्तिष्क में स्थित भाव स्थायी रूप से स्थित होने के कारण अपने आप से वह भाव जागृत होता है । राही मासूम रजा के उपन्यासों का भाषावैज्ञानिक शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण से स्वर का शब्द बनने में केवल सहायक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य स्थान है । जिस

प्रकार से समुंदर बनने के लिए बूँद की जरुरत है उसी तरह से शब्द बनने के लिए स्वरों की आवश्यकता है । भाषावैज्ञानिक शैलीविज्ञान का प्रमुख उपकरण चयन है । ध्वनिस्तर पर चयन में स्वरावृत्ति का अनुप्रयोग होने से कलात्मकता का अविष्कार दृष्टिगोचर हुआ है । जिससे लेखक की अभिव्यक्ति की पहचान के साथ संगीतात्मकता का प्रयोग नज़र आता है ।

संदर्भ :

1. आधा गाँव, प्रथम संस्करण : नौवीं आवृत्ति :2013, राजकमल प्रकाशन, प्रायवेट लिमिटेड, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002 ।

2. टोपी शुक्ला , तेरहवाँ संस्करण, 2016, राजकमल प्रकाशन, प्रायवेट लिमिटेड, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002 ।

3. हिम्मत जौनपुरी, राही मासूम रजा, प्रथम संस्करण : मार्च 1969, शब्दकार प्रकाशन, 2203 गली डकौत, तुर्कमान गेट, दिल्ली ।

साहित्याकाश

"रज्जब के साहित्य में सामाजिक चेतना"

रंजना शर्मा
शोधार्थी हिन्दी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर

राजस्थान का जनजीवन अनेक धार्मिक मान्यताओं और आस्थाओं में गुँथा हुआ है। राजस्थान मध्यकालीन, राजनीतिक संक्रमण इस्लाम के प्रवेश एवं तुर्क आक्रमणों, उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन आदि ने राजस्थान के जनमानस को भी उद्वेलित किया। मुस्लिम प्रभाव तथा रूढ़िवाद और बाह्य आडम्बर से उत्पन्न वातावरण में कुछ ऐसे संत और विचारक सामने आए जिन्होनें जाति–पांति के भेदभावों से ऊपर उठकर प्राणिमात्र के कल्याण की कामना की तथा भक्ति का सहज रूप–

"जाति पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि को होई।।"

का मंत्र दिया, जिससें विभिन्न अंधविश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त जनमानस में नवीन चेतना एंव स्फूर्ति जाग्रत हुई। ऐसे विचारकों को जनसाधारण ने संतो एवं देवताओं का दर्जा दिया जिन्हें आज भी सामान्यजन पूजता हैं तथा उनकी शिक्षाओं एवं जीवन का अनुकरण करने की लालसा रखता हैं। ऐसे संतो में धन्ना, मीरा, संत पीपा, दादू, मावजी, जसनाथजी, जाम्भोजी, चरणदास, सुन्दरदास, लालदास, संत रामचरण आदि प्रमुख हैं। जिसमें से राजस्थानी साहित्य में "रज्जब" के साहित्य में सामसिक संस्कृति इनके विचारों पर आघृत अनेक धार्मिक संप्रदायों को भी जन्म दिया। "रज्जब" जी ने धार्मिक, सामाजिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से योगदान दिया।

दादू के प्रमुख शिष्य संत रज्जब का जन्म सोलहवीं शताब्दी में सांगानेर (जयपुर) में एक पठान परिवार में हुआ। विवाह के लिए जाते समय दादू के उपदेश सुनकर रज्जब उनके शिष्य बन गए और जीवन–पर्यंत दूल्हे के वेश में रहते हुए ही दादू के उपदेशों का बखान किया। रज्जब जी की दो कृतियाँ उपलब्ध है– 1. रज्जवाणी एवं 2. सर्वंगी या सर्वायोग इसमें रज्जबवाणी रज्जब जी की मौलिक रचना है, तथा

सर्वंगी या सर्वागयोग साधना के भिन्न–भिन्न विषयों पर अनेक महात्माओं की तत्तद्विषयक उक्तियों का संकलन हैं। दोनों ही रचनायें अपनी–अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सर्वाधिक मुस्लिम कवि भक्तिकाल में हुए। कबीर के बोध को जन–जन तक पहुँचाने में दादूपंथी संतो की बड़ी भूमिका है। संख्या की दृष्टि से दादू के जीवन में ही जितनी बड़ी संख्या में शिष्य–प्रशिष्य दादू के बने, सम्भवतः उतने शिष्य किसी संत के नही हुये। रज्जब ने संग्रह, सम्पादन की नयी तकनीक विकसित की। सम्पूर्ण संत साहित्य को रागों और अंगो में विभाजित किया। विभिन्न अंगो में सम्बन्धित विषय की साखियाँ चुन–चुनकर रखी गयी। यह बहुत बड़ा काम था। रज्जब ने यह काम तब किया जब अपने ही लिखे संरक्षण की बात बहुत मुश्किल थी। रज्जब के संकलन में एक दो, दस नही 137 कवि है। एक ओर इस संग्रह में कबीर, रैदास जैसे पूर्वी बोली के संत हैं तो दूसरी ओर दादू, स्वंय रज्जब, वषना, गरीबदास, प्रेमदास, पीपा जैसे राजस्थानी बोलियों के संत हैं।

भक्ति आंदोलन के संदर्भ में रज्जब जी ने धर्म का प्रसाद भक्ति–आन्दोलन की पूर्व पीठिका को माना है। इस आन्दोलन के जो महत्वपूर्ण निष्कर्ष है वे सभी भक्ति के साथ जुड़े हुए है। सामान्यजन को अपने में समेट लेने की इनमें क्षमता थी। कालान्तर में यह भावना केवल वैष्णव–भक्ति तक सीमित नहीं रही। इसके साथ शैव, शाक्त, बौद्ध तथा जैन भी जुड़े। इससे प्रभावित भी हुए भक्ति–आन्दोलन तीन सौ वर्षां तक अपने चरम पर था। जिस भक्ति ने उत्तर भारत में आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण किया उसकी शुरूआत दक्षिण से हुई थी।

रज्जब जी ने अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक चिंतन को नया स्वरूप दिया उन्होनें समाज में जो भी वास्तविक रूप में चल रहा है, उसमें सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा दिया और समाज को एक नई राह दिखाई।

"कमल सीप जल जुदे, बसे अहि' मणि मुख मांही।
बडवानल पुनि बीज, वारि मयि भीजे नांही।।
दर्पण में प्रतिबिम्ब, शून्य' सब ही घट न्यारी।
लोई रंगे न सूत, देखि अचरज हो भारी।।
अहारह भार अग्नि रहित, सूर सलिल ले दे जुदा।
'रज्जब' सु साधु शक्तियों, मिले अमिल पाया मुदों।।"

विषम और कराल परिस्थितियाँ महापुरूषों को जन्म देती है। रज्जब जी के पूर्व की परिस्थितियाँ एवं रज्जब जी की समकालीन परिस्थितियाँ भी सौम्य बनाती हैं। युग पुरूष रज्जब जी के आविर्भाव काल में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ संक्रमण काल से गुजर रही थी। रज्जब जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को, उनके जीवन और दर्शन को वास्तविक रूप में समझने के लिए विशेष रूप से उनके पूर्व और उनकी समकालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक हैं उनकी प्रतिभा में पूर्ण मौलिकता रखते हुए भी उनके जीवन और दर्शन के निर्माण में उन्हें प्राप्त परम्पराओं का, सदगुरू की प्रेरणा और अपने समय के समाज जीवन की प्रतिक्रिया का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव निश्चित रूप से देखने में आता है।

भारत में प्रथम शताब्दी के बाद धर्मसाधना एवं दर्शन का महत्वपूर्ण साहित्य निर्मित हुआ। इन धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों के निर्माण की प्रेरक शक्ति उस समय देश में प्रवर्तित एवं नवोदित विभिन्न सम्प्रदाय थे। ये प्रवृतियाँ प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी और जातियता के प्रति नया दृष्टिकोण देने वाली होने से नवीन उत्साह और जोश से पूर्ण थी। उस समय भारत के उत्कर्ष के लक्षण व्यक्त हो रहे थे, पतन की कोई संभावना न थी।

16वीं शताब्दी के बाद धर्म प्रवृतियों में नवीनता आई। उन पर तांत्रिक प्रभाव स्पष्ट दिखता था। इस प्रभाव में ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी नहीं बच पाये। प्राथमिक प्रभाव के रूप में तन्त्रशास्त्र उनके लिए सहायक सिद्ध हुआ परन्तु, आगे चलकर उनमें अनेक विकृतियों का प्रवेश हो गया। इसके फलस्वरूप होने वाले अनिष्टों को देखकर भारत के महान् मनीषी भी स्तब्ध रह गये। 18वीं शती के अन्त तक उन्मुक्त विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का तो अभाव रहा, प्रतिकूलता भी इसमें बाधा बन के आयी थी। परन्तु मध्यकालीन भक्ति साहित्य को देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि भारत की प्राण रूप उसकी अध्यात्म–चेतना का दमन किसी के द्वारा भी सम्भव न हुआ, बल्कि दमन का परिणाम विपरीत हुआ। यह प्रवृति और अधिक शक्ति सम्पन्न हुई, परन्तु इसके साथ दो अनिष्ट तत्व भी आये (1) धर्मान्तर की स्थिति– इस लोभ के प्रचार के कारण और ब्राह्मण धर्म की संकुचितता के परिणाम स्वरूप हिन्दू का मुसलमान हो जाना और (2) अपने सम्प्रदाय की गूढ़ता को सुरक्षित रखने के प्रयत्नों में स्वस्थ दृष्टि और विवेक के अभाव से विकृतियों का प्रवेश।

इन दो कारणों से मूल वैदिक आस्तिक परम्परा से विच्छिन्न होकर धर्म प्रवृतियों में नास्तिक स्वच्छन्दता आ गई उदाहरणार्थ राजा भोज के समय 'नील परी–दर्शन' का आर्विभाव हुआ। उसके सिद्धान्त में त्रिरत्न अर्थात सुरा–सुन्दरी और काम को प्रथम स्थान दिया गया।

पूर्व मध्ययुग की विविध साधनाओं के अन्तर्गत 16वीं से 18वीं शताब्दी तक मन्त्र, यन्त्र और बुद्धा के तांत्रिक सिद्धान्त का प्रभाव वैष्णव, शाक्त, शैव, गाणपत्य, सौर, बौद्ध और जैन सब धार्मिक सम्प्रदायों पर पड़ा। उन्होंने अपने–अपने आराध्य को सर्वश्रेष्ठता की मान्यता देकर उपासना–भाव को अधिक प्रगाढ़ता दी। इस भाव विकास के साथ दर्शन–पक्ष भी पुष्ट हुआ। इसमे महान् मनीषियों के जीवन में कर्मव्यता, व्यक्तित्व में जागरूकता और दर्शन में प्रतिभा का उत्कर्ष देखने में आता है।

तंत्र और प्रमाण–ग्रन्थों को सामान्य मनुष्य हृदयागम नहीं कर सकता था, परन्तु पांच राज का वैष्णव–मन सबके लिये ग्राह्य था और पंचदेवोपासना के विधान से सबकी रूचि की रक्षा भी हो जाती थी। इसके अलावा पाशपत–मत के साथ शैवागम का प्रवर्तन भी था जो शिव–शक्ति की एकता के प्रतीकात्मक वर्णन में आत्मा–ब्राह्मा की एकता का निरूपण कर रहा था। इस काल में प्रत्येक धर्म–सम्प्रदाय संघटित और प्रौढ़ हो रहा था। दक्षिण में आलवारों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव–धर्म की बागडोर ऐसे कट्टर–पंथी आचार्यों के अधिकार में आई कि वे परम्पराओं से प्राप्त शास्त्रीय मर्यादाओं की रक्षा में भी अपने धर्म की सुरक्षा समझते थे। दूसरी ओर भक्तों में खानपान के व्यवहार में जाति भेद एवं छुआछूत की भावना न थी। वे शूद्र तथा स्त्री को भक्ति का अधिकारी मानते थे।

"द्वै मुखे उपजै दोष, लागै एक हि पिंड सौं।
तिन हुं न सुख संतोष, तो द्वै धट क्यों मिल चलहिं।।"

कर्मवाद कहता हैं– ''मनुष्य को अपने कर्म का फल मिलता हैं।'' जिन्होने व्यवहार में अकारण किसी को दुखी देखा, उन्होने ज्ञान सिद्धान्त का खण्डन किया। वेद में निरूपित कर्म–सिद्धान्त पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को मानता हैं और कर्म तथा उनके फल को उनसे सम्बन्द्ध कर संगति देता है। इसमें सनातन धर्म त्रिकाला बाधित सिद्ध होता हैं। वेद को न मानने वाले पुनर्जन्म और पूर्वजन्म को न मानने के कारण कर्म और उसके फल का सम्बन्ध नहीं समझ पाते। इसलिए सब वैदिक मतो ने कर्मकाण्ड का विरोध किया हैं। बौद्ध धर्म इस विरोध में सबसे आगे था। प्रारम्भ में बौद्ध सिद्धों के दो पंथ हुए–महायान और हीनयान। ये दोनो सैद्धान्तिक मतभेद वश स्वतन्त्र रूप के प्रवर्तित हुए। महायान पंथ में प्रविष्ट दोषों से बचने के लिए वज्रयान पंथ चला। उनकी नैतिक प्रवृति के साथ दर्शन में यथार्थवादी, अनेक वादी और

नेरात्म्यवादी लक्षण थे। जब यह पंथ नैतिक प्रवृत्ति में अपनी गतिविधि को ठीक से न संभाल पाया, तब इस पंथ के कुछ अनुयायियों ने 'सहजयान' और कुछ ने 'मंत्रयान' नाम से अपना अलग सम्प्रदाय शुरू किया। मंत्र के साथ तंत्र का प्रवेश भी अनिवार्य हो गया और उसमें गुह्य तत्वों की ओर संकेतिकता की प्रधानता रही। उन्हीं का रूपांतर वज्रयान में हुआ।

इतिहास में भी इसका उल्लेख मिलता हैं– 16वीं शताब्दी के बाद नालंदा, विक्रमादित्य, ओदन्तपुरी आदि विद्या पीठों में प्रचलित बौद्धधर्म तांत्रिक और योग–क्रियाओं की नवीनता के कारण तीन प्रधान मतों में प्रस्फुटित हुआ– वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान।" तीसरा कालचक्रयान का मत आज तिब्बती अनुवाद में सुलभ है। वज्रयान पंथ ने सबको साधना का अधिकार दिया, इससे वह अधिका लोकप्रिय हुआ। इस पंच के सिद्धान्त ने बुद्ध में देवत्व का आरोप कर ईश्वरवाद की प्रेरणा दी और अनेक जातक–कथाएँ लिखी। यही पंथ साधना की सहजता को व्यक्त करने के कारण सहजयान नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने धर्म और सामाजिक आचरण में व्यावहारिक एकता की स्वाभाविकता का प्रतिपादन किया। सहजयान में 'वज्र' पुमिन्द्रिय का प्रतीक हैं। उसे प्रज्ञा का बोधक और बोधिचित्र का सारस्वरूप बताया गया। यह महासुख अर्थात् पूर्णानन्द की समरकता की सहज स्थिति हैं। चित्र शुद्धि के लिए इसकी साधना–पद्धति में 'योगिनी–मार्ग' एक अपूर्व विशेषता रखता हैं। इसमें पुरूष के लिए अपनी पत्नी के साथ साधना करने का विधान है। इसके समर्थन में बताया गया है कि बन्धन मुक्ति में कारण रूप चित्त सहवास–सुख की अनुभूति के बल पर महासुख की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। इस मार्ग को राग मार्ग, अवधूती, चांडाली, डोंबीन आदि नाम भी दिए गए हैं। इन विविध परम्पराओं के परिवर्तन, रूपांतर, विकास और प्रवर्तन की प्रक्रिया में सर्वाधिक मुखरित विशेषता उनका कार्मिक दृष्टिकोण है। प्रारम्भिक काल के सन्तो ने आध्यात्मिक बातों को अधिक महत्व दिया।

मध्ययुग का समाज–जीवन धर्म द्वारा संचालित और नियंत्रित था। यह तथ्य हमें तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिंबित युग–जीवन में उपलब्ध होता है। उस समय समाज के प्रत्येक स्तर पर धर्मजीवन की धड़कन थी। इसी कारण विधर्मियों के आक्रमक–अभियानों में राजनीतिक जुल्मों में सामाजिक सुधारक प्रतृतियों में और साहित्य में धर्म के उन्मूलन या उसकी प्रतिष्ठा के संघर्ष मूलक प्रयत्न स्पष्ट दिखते हैं। समाज की प्रिय धार्मिक भावना को अपनाने वाला विदेशी धर्ममतावलंबी लोकप्रिय हो सकता था और अपनी धार्मिक भावनाओं का प्रचार–प्रसार कर लोक–जीवन को प्रभावित भी कर सकता था।

धर्मशास्त्र और धर्मसाधना एक दूसरे में ओत प्रोत हैं। मध्ययुग के सर्वमान्य गृहस्थ जीवन में धर्मशास्त्र का अनुशासन था। विभिन्न सम्प्रदायों में दीक्षित साधक अपने–अपने सम्प्रदाय में मान्य ग्रन्थों के निर्देशानुसार साधना करते थे। लोगों को तीर्थाटन, स्नान, व्रत, उपवास, पुण्यकर्म, स्वर्ग–नरक, कर्मफल और पुर्नजन्म पितृश्राद्ध वर्णाश्रम व्यवस्था आदि में पूर्ण श्रद्धा थी और कर्मकाण्ड के अनुरूप विविध देवी–देवताओं की वे पूजा करते थे। इन्हीं कारणों से मनुष्य अधिक बहिर्मुख हो गया था और बाह्यचार मूर्तिपूजा आदि को महत्व देता था।

"दुष्ट वचन अरू दुणिढ तप, मन तन तिन जरि जाँहिं।
रज्जब सु शब्द शरद शशि, सब ठाहर सु सिराहि।।"

भिन्न–भिन्न विचारों तथा संस्कृतियों के संघर्ष के कारण एक नवीन प्रकार के समाज का निर्माण होता जा रहा था। लोगों को किसी योग्य मार्ग दर्शक की आवश्यकता थी। यह विकट कार्य उसी के द्वारा संभव था, जिसकी बुद्धि परस्पर–विरोधी प्रकृति के बीच समन्वय तथा सामंजस्य लाने के अतिरिक्त किसी स्थायी व सार्वभौम नियम तथा आदर्श का प्रस्ताव रखने में भी समर्थ हो। उक्त युग के पूर्वार्द्ध तक यहाँ का क्षेत्र तैयार हो चुका था। उसके उत्तरार्द्ध के आरम्भ से ही कुछ ऐसे व्यक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगा था, जिन्हें कम से कम पथ–प्रदर्शक संतो के नाते स्मरण करने की प्रवृति होती हैं। परिस्थितियों की प्रतिक्रिया से उनका आंतरिक चैतन्य उद्बुद्ध हुआ। उन्होने अबाधगति से कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया, अदम्य प्रखरता से समस्या की गंभीरता की थाह ली और संघर्ष का निर्भय होकर सामना किया। इसमें समाज का उद्धार हुआ और धर्म की रक्षा हुई। तब समाज की रक्षा में राजनीति और धर्म दोनों जिम्मेदार माने जाते थे। रज्जब जी ने अपने जीवन से अनुभवों और गुरू के उपदेशों से समाज को नई राह दिखाई जिसके कारण आज भी लोग उनका अनुसरण कर जीवन को जीते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. नारायणादास स्वामी कविरत्न संतकवि – श्री रज्जबवाणी, पृष्ठ संख्या –1240
2. पाण्डेय डॉ. नन्दकिशोर– संत रज्जब, पृष्ठ संख्या –29
3. जैन डॉ. हुकम चन्द (2022)– राजस्थान का इतिहास संस्कृति परम्परा एवं विरासत, पृष्ठ संख्या–443, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
4. वंशी बददेव– संत रज्जब, पृष्ठ संख्या–42

5. संस्कर्ता नानूराम– राजस्थानी लोक साहित्य पृष्ठ संख्या–73

6. सिंहल ब्रजेन्द्र कुमार– रज्जब की सरबंगी, पृष्ठ संख्या–29

7. वर्मा ब्रजलाल– संत कवि रज्जब, पृष्ठ संख्या–232

वेबसाईट–

www.hi.unionpedia.org
www.wikipedia.org
www.pustak.org

साहित्याकाश

"क्या मुझे खरीदोगे"–स्त्री अस्तित्व का संघर्ष

Dr. K. Madhavi
Associate Professor of Hindi
Govt. Degree collage
Ibrahimpatnam
Mo.No. 9912838898

शोध सार :

"क्या मुझे खरीदोगे" उपन्यास मुंबई जैसे महानगरों में महिलाओं पर हो रहे यौन शोषण की दास्तान है। सदियों से स्त्री को अलंकृत वस्तु व भोग्या के रूप में ही देखा जा रहा है। इस उपन्यास में भी नायिका सरिता ने जीवन के थपेड़ों में, अंधेरे, गुमनाम गलियों में धक्के–खाते हुए भी स्वयं को बिखरने नहीं दिया। अपने अस्तित्व के लिए सदा संघर्षरत रहती है। हमारे विराट संस्कृति में कई परिवर्तन हुए। परंतु स्त्री–पुरुष के बीच की स्थिति आज भी वैसे ही है, जिसमें शोषण भी है और आंदोलन भी। सरिता को प्रेम के नाम पर धोखा मिलता है, फिर भी वह स्वयं को संभालने का प्रयास करते हुए, अपने भीतर के सुख–दुख को संजोती है। जीवन के हर मोड़ पर कोई–न–कोई रिश्ता मिल जाता है। पर हर रिश्ते का अपना स्वार्थ होता है। सरिता को भी हर मोड़ पर सागर, रमेश शर्मा आदि कई मिले। किन्तु उसके भीतर की जद्दोजहद उसे चैन लेने नहीं देती। अपने अस्मिता के लिए संघर्ष करते हुए जीवन में आगे बढ़ती है।

बीज शब्द : मोहनदास नैमिशराय– रचनाएँ– क्या मुझे खरीदोगे– सामाजिक उपन्यास–स्त्री अस्तित्व आदि।

स्त्री, श्रद्धा एवं शक्ति का प्रतीक मानी जाती थी। पर वही स्त्री आज वेदना एवं कुण्ठा का प्रतीक बन गई है। मर्यादा के आड़ में स्त्री को दबाकर रखा जा रहा है। सदियों से ही स्त्री को भोग्या के रूप में देखा जा रहा है। मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास "क्या मुझे खरीदोगे" में स्त्री संघर्ष व अंतर्द्वन्द्व का यथार्थ चित्रण हुआ है।

मोहनदास नैमिशराय जी हिंदी दलित साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार हैं। आप पर बाबा साहेब अम्बेडकर जी का प्रभाव अधिक था। अम्बेडकरवादी सिद्धांतों से प्रेरित होकर कई रचनाओं का सृजन किया। "बाबा साहेब ने कहा था", "डॉ. अम्बेडकर और उनके संस्मरण", "अम्बेडकर डायरेक्टरी", "स्वतंत्रता संग्राम के दलित कहानियाँ", "झलकारी बाई" (उपन्यास) "मुक्ति पर्व" (उपन्यास) आदि प्रसिद्ध रचनाओं के प्रणेता हैं।

"क्या मुझे खरीदोगे" उपन्यास के संबंध में लेखक ने लिखा है कि– "कोई भी औरत पुरुष के आगे क्यों बिके? मेरे भीतर मंथन होता था। ऐसे समय में परंपराओं के खिलाफ विद्रोह करता था। विद्रोह की जमीन मेरे भीतर तैयार भी हो रही थी। मेरे भीतर लिखने से अधिक पढ़ने की चाह थी। पढ़ना केवल किताबी नहीं, बल्कि ऐसी महिलाओं के नजदीक जाकर पढ़ना। उसी से उनके सुख–दुख के रंगों को अपने भीतर उतारता रहा।"

युग बदले। नवीन संशोधनों व आविष्कारों से मानव जीवन में कई क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, किन्तु स्त्री तब भी पुरुषों के हाथ की कठपुतली थी, आज भी है। बाज़ार में हर चीज बिकती है। हर चीज़ का अपना एक मूल्य होता है, लेकिन स्त्री का जिस्म आज भी बाज़ार में बिकता है।

उपन्यास के आरंभ में मुंबई की बदनाम गलियाँ जो लालबत्ती के नाम से जानी जाती है, उनका चित्रण करते हुए मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं कि– "सदियों से मुंबई में नारी का बिकना मजबूरी रही है और पुरुष का खरीदना विवशता।––––बाजारू भाषा में बदनाम अड्डों को लालबत्ती क्षेत्र भी कहा जाता है।"[1]

उपन्यास की नायिका सरिता भीम बस्ती में अपनी माँ, दमयंती के साथ रहती थी। सरिता, कॉलेज़ में पढ़ रही थी। पिता के गुजर जाने के बाद दमयंती ने बेटी की देख–रेख में कोई कसर न छोड़ी। सरिता, अपने सहपाठी सागर से प्रेम करती है। हर दिन वह सागर से मिलती और उसके प्रेम के आगोश में खो जाती। तब भी सरिता, घर पर देर से पहुँचती, माँ उसे स्त्री की नियति व समाज की स्थिति को समझाते हुए कहती हैं कि–

"सरिता, न जाने कभी–कभी मुझे डर–सा लगता है। दमयंती गंभीरता बनाए रखते हुए बोली। डर लगता है। पर किससे?" स्वर में आश्चर्य था उसके प्रश्न का जवाब दिया था माँ ने,

"इस दुनिया से।

"पर माँ जमाना बदल चुका है।" सरिता ने नए जमाने की दलील देते हुए कहा। "जमाना चाहे कितना भी क्यूँ न बदल जाएँ औरत की नियति नहीं बदला करती।"[2]

प्रेम, पवित्र भावना है। जिसमें समर्पण, त्याग, निस्वार्थता एवं विश्वास निहित होते हैं, किन्तु आज का प्रेम, मात्र आकर्षण व संभोग का ज़रिया बन गया है।

उपन्यास की नायिका सरिता, कॉलेज में सागर नामक लड़के से प्रेम करती थी। सागर, भी सरिता को चाहता था।

"सरिता, मैं तुम्हारे इतना करीब आ गया हूँ कि अब प्यास लिए वापस लौटने को मन नहीं करता।"[3]

किन्तु जब सरिता अपने रिश्ते को नाम देना चाहती थी, तब सागर कहता है कि–

"सरिता, देखो मुझे गलत मत समझना। मैं तुमसे शादी करूँगा, अवश्य ही। लेकिन यहाँ नहीं।

"पर क्यूँ नहीं सागर?"

"इसलिए कि यह समाज, यह दुनिया हमें चैन से यहाँ रहने न देगी। माना कि तुम्हारे घरवाले तैयार हो जायेंगे, पर मेरा परिवार कभी भी तुम्हें अपने घर की बहू स्वीकार न कर सकेगा।

इसलिए कि जिस जाति से तुम हो, उस जाति की बहू को वे अपने घर में सहन नहीं कर पाएँगे।"[4]

सागर की बातों को सुनकर, सरिता अचरज में पड़ जाती है। सरिता को लगा कि सागर जो उच्च शिक्षित होते हुए भी जातीय अस्मिता पर आघात पहुँचाने का प्रयास करता है।

सरिता, अपने दिल की सारी बातें नीलम के साथ साझा करती थी। पर कुछ दिनों से सरिता बेचैन सी रहती थी। माँ के पूछने पर सरिता, टाल देती थी। सरिता, सागर के प्रेम में पूरी तरह डूब चुकी थी।

"सरिता, कुछ समझने की कोशिश मत करो।

"मेरे और अपने बीच प्यार भरे लम्हों को समझो वही हमारी दुनिया है।" मुझ पर विश्वास रखो सरिता।

"सागर चाहे जहाँ ले चलो। मैं तो तुम्हारी हूँ बस।"[5] सरिता, सागर के प्रेम में इतनी खो गई थी कि, उसने ना चाहते हुए भी घर छोड़कर सागर के साथ मुंबई में नया जीवन आरंभ करने का निर्णय ले

लिया। मुंबई जिसे सपनों की नगरी कहते है जो दिन के चहल–पहल में दौड़ता रहता है, वही शहर रात में शबाब में डूबा रहता है।

सरिता पहली बार मुंबई आई थी। पहले तो दोनों कुछ दिन मुंबई के एक होटल के कमरे में थे। एक सप्ताह के बाद जब दोनों दादर से चर्च गेट जाने के लिए रेलवे स्टेशन पहुँचे तो थे, लेकिन सागर ट्रेन चढ़ न सका। सरिता ने चर्च गेट पर काफी देर तक इंतेजार किया सागर का। पर सागर न चर्च गेट पर पहुँचा, ना दादर और ना ही होटल के कमरे में। प्यार और बफ़ा की बातें करने वाला सागर, सरिता को बीच मझदार में छोड़कर चला गया।

मुंबई को सपनों की नगरी कहते हैं। हर दिन हजारों लोग लाखों अरमानों को लिए अपने सपने साकार करने के लिए मुंबई आते हैं। उन्हीं में से एक था रमेश। रमेश लेखक था। कागज़ों पर सपने उतारता था। मुंबई आये चार वर्ष हो चुके थे, फिर भी रमेश के सपने अधूरे ही रहे। लिखना उसका शौक था, किन्तु वही रोजी–रोटी का ज़रिया बन गया।

रमेश कहानियाँ लिखता था। जो दो–चार पत्रिकाओं में छपी भी, किन्तु अब रमेश जो भी लिखता है, वह रमेश के नाम से नहीं, किसी प्रसिद्ध लेखक के नाम से बिकते थे।

लेखन भी व्यापार बन गया है। आज भी रमेश अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए भटकता फिर रहा है।

मुंबई प्रवास के चौथे वर्ष में रमेश की मुलाकात 'शर्मा जी' नामक प्रकाशक से हुई थी। इन्होंने ही रमेश के दो उपन्यास छापे थे। निराशा से घिरे रमेश को एक दिन सरिता, सड़क पर नज़र आती है।

लेखक लिखते हैं– "मुंबई की शाम, अजीब मदस्त सी। जैसे केश खोले रूप लावण्य से लबालब किसी मूक आमंत्रण हो।"[6]

रात में मुंबई की सड़कों पर औरतों का खड़ा रहना आम बात थी। पर रमेश को सरिता उन औरतों की तरह नहीं दिखाई दी। इसलिए रमेश ने सरिता से बात करने की कोशिश की, तभी सरिता ने कहा कि–

"किसी को अपना समझकर घर छोड़ा। लेकिन अब न घर है और न वह।"[7]

रमेश, सरिता को दिलासा देते हुए, अपने घर चलने को कहता है। सरिता के मन में द्वंद्व उभरने लगा था। रमेश भी 'विश्वास' शब्द की दुहाई देते हुए अपने घर ले जाता है।

सरिता को भी कुछ नहीं सूझ रहा था। वह भी उसके साथ चली गई। सरिता और सागर के बीच धीरे–धीरे अजनबीपन धुँधला होने लगा। फिर भी सरिता को लगता है कि– "पुरुष ने आज तक बिखेरा ही है। पुरुष सब कुछ बिखेरता है। अपने आपको और साथ में दूसरों को भी।"[8]

धीरे–धीरे सरिता खुद को संभालने की कोशिश करने लगती है। तभी एक दिन रमेश के घर शर्मा जी आते हैं।

शर्मा कुशल व्यापारी थे। महाजनी सभ्यता के दाँव–पेंच भली–भाँति जानते थे। किताबों के आर्डर लेने से लेकर पेमेंट लेने तक मीरा को जरिया बनाया जाता था। जब रमेश के घर सरिता को देखकर परिचय पूछने पर सरिता कहती है कि– जी मैं उनकी पत्नी हूँ।"[9] कुछ समय के पश्चात् शर्मा जी कहने लगे कि–

"देखिए भाभी जी, हर पुरुष और महिला के मन के किसी कोने में लेखकीय संवेदना छुपी होती है। केवल उन संवेदनाओं को बाहर लाना ही तो होता है।"[10]

शर्मा जी की बात सुनकर सरिता अपने मन की अनुभूतियों को समेटते हुए कहानी लिखती हैं और उसे देने शर्मा जी के पास जाती है। घर लौटने के बाद रमेश के पूछने पर वह सारी बात बताती है। तभी रमेश सरिता को शर्मा से सावधान रहने को कहता है। पर सरिता समझ नहीं पाती। इस तरह रमेश के मना करने पर भी सरिता शर्मा से मिलने जाती है। इसी बात पर दोनों में बहस होती है–

"मेरे मना करने के बाद भी तुम शर्मा के यहाँ गईं।"

"यह क्यों नहीं कहते कि नारी को बाँधने की पुरुष की शुरू से ही आदत रही है। इसलिए कि वह उसे अपनी जागीर समझते हैं, अपनी गुलाम मानता है। उसकी आजादी को खत्म करने––––।"[11]

दोनों में वाद–विवाद चलने लगा। तभी

"सरिता, तुम अपनी गलती नहीं समझ पा रही हो?"

"मैंने कोई गलती नहीं की।"

"मैं अतीत नहीं चाहती। सिर्फ वर्तमान में जीना चाहती हूँ। आखिर मुझे भी तो जीने का हक है।"

"तो चली जाओ उसी शर्मा के पास। लगता है तुम्हें एक साथी की जरूरत नहीं किसी व्यापारी की चाह भर है।"[12]

आवेश में सरिता ने गलत कदम उठा लिया था। सरिता ने शर्मा जी का दरवाज़ा खटखटाया। शर्मा भी तो यही चाहता था, लेकिन तभी शर्मा को किसी काम से बाहर जाना था। सरिता को वहीं बैठने के लिए कहकर, वह चला जाता है।

तभी मीरा आती है। मीरा पिछले पाँच सालों से धंधा करती थी। शर्मा जी ने मीरा के ज़रिये अपना उल्लू सीधा करता था। मीरा, सरिता के चेहरे पर छायी उदासी को पढ़ने की कोशिश करते हुए, उसे अपने साथ धंधा करने की बात बताती है। – "मैं भी कभी तेरी तरह शरीर बेचने को गलत ही मानती थी, लेकिन मजबूरी में मुझे यह सब करना पड़ा। बेचना पड़ा अपने शरीर को, अपनी आत्मा को। नारी आखिर कब तक पुरुष का खिलौना बनी रहे, क्या पुरुष उसका खिलौना नहीं बन सकता?"[13]

मीरा के चले जाने के बाद शर्मा धोखे से कोल्ड में नशे की गोली मिलाकर सरिता को देता है। नशा टूटने पर पता चला कि उसके साथ धोखा हुआ। ना चाहते हुए भी सरिता को जिस्म बेचना पड़ा।

सरिता के जीवन में पहले सागर आया था और उसने अनगिनत बार सरिता को भोगा था। उसके बाद सरिता के जीवन में रमेश आया। दो महीनों के साथ में कई बार रमेश ने भी भोगा था। तीसरा पुरुष शर्मा चोर बनकर जबरन सरिता के देह को भोगा था। उसके उपरांत कई पुरुषों से संभोग किया किन्तु सरिता अब अतीत के कड़बे पलों से छुटकारा पाना चाहती थी। वह खुद के लिए, जीना चाहती थी। वह मुक्ति चाहती थी। इसी कश्मकश में सरिता को एक दिन मीरा मिलती है। सरिता, मीरा से कहती है कि– "मीरा जी, जो कार्य कुछ समय पूर्व तुम्हें करना चाहिए था। तुम न कर सकी। पर आज मैं कर रही हूँ। तुम्हीं ने तो कहा था। हमें पुरुष पर आधारित होकर नहीं रहना चाहिए। मैं स्वतंत्र होकर जीना चाहती हूँ।"[14]

सरिता के आत्म विश्वास को देखकर मीरा ने भी उसका साथ दिया।

निष्कर्ष :

यह उपन्यास स्त्री पर हो रहे यौन शोषण का यथार्थ चित्रण है। मोहनदास नैमिशराय जी का उपन्यास "क्या मुझे, खरीदोगे" मैं मानवीय संवेदनाओं एवं दुर्बलताओं का जो चित्रण किया है, उसे नकारा नहीं जा सकता। सभ्य कहलाने वाले अपने चेहरों पर मुखौटे लगाकर, इस देहवादी संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं। यह हमारे समाज पर तमाचा है। आज हाशिये का समूचा समाज अपनी जबान खोलने लगा है। भविष्य के लिए यह अनिवार्य है।

संदर्भ सूची :

1. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 13, श्रीनटराज प्रकाशन
2. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 24–25 श्रीनटराज प्रकाशन
3. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 30, श्रीनटराज प्रकाशन
4. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 44, श्रीनटराज प्रकाशन
5. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 50, श्रीनटराज प्रकाशन
6. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 63, श्रीनटराज प्रकाशन
7. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 64, श्रीनटराज प्रकाशन
8. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 71, श्रीनटराज प्रकाशन
9. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 81, श्रीनटराज प्रकाशन
10. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 82, श्रीनटराज प्रकाशन
11. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 101, श्रीनटराज प्रकाशन
12. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 102, श्रीनटराज प्रकाशन
13. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 106, श्रीनटराज प्रकाशन
14. क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 119, श्रीनटराज प्रकाशन

साहित्याकाश

तेलुगु "पदकविता पितामह" ताल्लपाक अन्नमाचार्य के श्रृंगार संकीर्तन

डॉ. सुमनलता
हैदराबाद
9849415728

शोधसारः करीब–करीब डैढ़ सौ वर्षों तक ताल्लपाक के कवि तेलुगु सरस्वती के गले में साहित्यक आभूषण तथा हार पहनाते रहे। ताल्लपाक के कवियों ने तेलुगु भाषा को राज भवनों के बाहर निकाल कर सामान्य जनता के अनुकूल बनाया था। (जिसे हम "जानुतेनुगु" कहते हैं) उस युग में उनके साहित्य के कारण जो स्फूर्ति तथा चेतना तेलुगु भाषा तथा साहित्य को प्राप्त हुई थी, वह अन्य किसी युग या कवियों के कारण प्राप्त नहीं हुई। उन्हें मालूम था कि धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए साहित्य ही मूलाधार है। अतः उन्होंने भाषा को साधन बनाकर नित्य नये प्रयोगों के साथ धर्म को प्रजा के सम्मुख रखा। इस प्रकार वैष्णव धर्म तथा साहित्य–दोनों की उन्नति में कवि सहायक बन सके। इनके साहित्य को एक विशाल मंदिर से तुलना कर सकते हैं।

बीज शब्दः संकीर्तन, संकीर्तन भंडार, श्रृंगार, वेंकटेश्वर, विरह, नायक – नायिका

प्रस्तावनाः

अध्ययन से पता चलता है कि तेलुगु साहित्य का आरम्भ, कवित्रय (नन्नया, तिक्कना, और एर्रा प्रगड़ा) का धार्मिक ग्रंथ "आंध्र महाभारत" से हुआ था। अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि तेलुगु साहित्य के आरम्भिक काल में आंध्रप्रदेश पर शैव तथा वैष्णव धर्मो का प्रभाव अधिक मात्रा में था। अतः दोनों धर्मावलम्बी अपने धर्म के प्रचार के लिए "जानुतेनुगु" (अर्थात् बोलचाल की भाषा) को अपनाकर उसमें नये–नये प्रयोग करते रहे। फलस्वरूप आरम्भिक काल से ही तेलुगु भाषा में उत्तम ग्रंथों का निर्माण हुआ। अपने धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए दोनों धर्मावलम्बियों ने साहित्य के साथ–साथ संगीत का भी सहारा लिया।

'तेलुगु पदकविता पितामह' ताल्लपाक अन्नमाचार्य, एवं परिवार

तेलुगु भाषा के साहित्याकाश में अत्यन्त प्रकाश के साथ चमकने वाले तारे हैं –ताल्लपाक के कवि अन्नमाचार्य, उनकी पत्नी, पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र। इन कवियों की तुलना हम अरून्धती नक्षत्र सहित सप्तर्षि मंडल से कर सकते हैं। वैष्णव भक्ति साहित्य में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण तेलुगु साहित्य में इन कवियों का मूर्धन्य स्थान है। इनकी इस महानता का कारण यह है कि प्रायः एक ही परिवार के व्यक्ति, स्त्री तथा पुरुष ने मिलकर भाषा, साहित्य तथा संगीत का ही नहीं वरन् विशिष्टाद्वैत भक्ति तथा तिरुपति क्षेत्र की जो सेवा की थी, वह अन्यत्र देखने में दुर्लभ है। तिरुपति क्षेत्र में स्थित श्री वेंकटेश्वर स्वामी के नाम से संसार के कोने–कोने के लोग परिचित हैं। अत्यन्त मधुर तथा सरल भाषा को माध्यम बनाकर देशी रीतियों में संगीत तथा साहित्य को अपना साधन बनाते हुए ताल्लपाक के कवियों ने स्वामी बालाजी पर विभिन्न रचनायें की। "एक ओर तिरुपति क्षेत्र के भगवान् बालाजी के अनुग्रह के कारण ताल्लपाक के कवियों ने नाम तथा यश कमाया था तो दूसरी ओर ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं के कारण ही वेंकटेश्वर स्वामी की प्रशंसा कोने–कोने में फैल गयी। अतः दोनों का यश अन्योन्याश्रित है।"(ताल्लपाक कवुलु कृतुलु–विविध साहिती प्रक्रियलु–वे– आनंदमूर्ति, पुष्ठ54)

उनकी अधिकांश रचनाएँ मुक्तक तथा गेय पद शैलियों में ही लिखी गयी हैं।

संकीर्तनः

संकीर्तन शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्यक कीर्तनम्' से हुई है। कीर्तन का अर्थ है– किसी की विशेषताओं का गुणगान करना अथवा वर्णन करना। "अगोचर दिव्य शक्ति, अर्थात् भगवान के गुणों का गान करना कीर्तन कहलाता है जिसमे भक्त हृदय को भगवान के पाद पद्मों तक ले जाने की अपूर्व क्षमता होती है।" कीर्तन का सम्बन्ध अपने इष्ट के नाम गुण, रूप और लीला से है। जो गाया जाता है, उसे गेय या पद या गीत कहते हैं। अमरकोष के अनुसार पदों में भक्त के हृदय को भगवान के पास ले जाने की अपूर्व शक्ति है। प्राचीन काल में पद तथा संकीर्तन पर्यायवाची शब्द थे।

संकीर्तनों की यह परम्परा संस्कृत से आते हुए सभी भारतीय भाषाओं में अत्यन्त लोकप्रिय बन गयी। जयदेव तथा लीला शुक के कृष्ण कर्णामृत के पद आज भी बड़े चाव से गाये जाते हैं। उनका अभिनय भी किया जाता है। यद्यपि तेलुगु में पाल्कुरिकि सोमनाथ जैसे वीरशैव कवियों के द्वारा संकीर्तन रचना करने का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी रचनाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। सोमनाथ के तुम्मेद पद, प्रभात पद, आनन्द पद, निवालिपद तथा वेन्नलपद आदि लोक साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। नरसिंह के भक्त कवि

कृष्णमाचार्य तेलुगु के प्रथम वचन गीतकार थे। मधुर भक्ति के क्षेत्र में ये आलावारों से प्रभावित थे। इनकी प्रशंसा स्वयं ताल्लपाक के कवियों ने की है। इनसे ही प्रभावित होकर अन्नमाचार्य ने लोक शैलियों को अपनाया।

प्राचीनकाल में पद का अर्थ संगीत तथा साहित्य के सम्मेलन से उत्पन्न रचनाओं से था। "लक्षणकारों ने इसके वाक्" को साहित्य, तथा "गेय" को संगीत की संज्ञा दी है। इस प्रकार के संगीत तथा साहित्य अर्थात् वाक्य और गेय–दोनों को मिला कर रचना करने की क्षमता जिनमें होती थी, उन्हें "वाग्गेयकार" कहते थे। अन्नमाचार्य, पेदतिरुमलाचार्य तथा चिनतिरुमलाचार्य – ये तीनों महान् वाग्गेयकार थे। इन तीनों ने हजारों की संख्या में संकीर्तन लिखे। ताल्लपाक के कवियों को ही तेलुगु के सर्वप्रथम वाग्गेयकार होने का श्रेय प्राप्त है। ताल्लपाक के कवियों ने संकीर्तनों की रचना से ही संतुष्ट न हो कर उनके लक्षण भी स्पष्ट किये। उनकी इस अपूर्व क्षमता के ही कारण इस वंश के मूल पुरुष अन्नमाचार्य को "पदाकविता पितामह" की उपाधि प्राप्त हुई।

संकीर्तन भंडारः उनकी संकीर्तन सेवा के संदर्भ में ही विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं को संकीर्तन भंडार में सुरक्षित रखा। प्रायः अन्नमाचार्य स्वयं अपनी रचनाओं को ताल पत्रों पर लिखा करते थे और उन्हें सुरक्षित रखते थे।

उनका एक संकीर्तन इस प्रकार है कि – हे भगवान! तुम्हारे पाद पद्मों की ये संकीर्तन रूपी पुष्पों से पूजा कर रहा हूँ। केवल एक ही संकीर्तन हमारा उद्धार करने के लिए अधिक है। बाकी उसी संकीर्तन भंडार में ही पड़े रहने दो।"

बाद में उनके पुत्र पेद तिरुमलाचार्य ने इन संकीर्तनों को 'ताम्र पत्रों' पर लिखवाया था। कभी–कभी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए दूर–दूर श्रीरंगम्, अहोबिलम् आद वैष्णव क्षेत्रों तक भेजने के लिए किसी किसी संकीर्तन् की दो–दो, तीन–तीन प्रतियाँ भी लिखवायी गयी थी। आज भी तिरुपति क्षेत्र के मंदिर की चहार दीवारी में ताल्लपाक कवियों की एक अलमारी है। उसके दोनों ओर अन्नमय्या तथा पेद तिरुमलाचार्य की मूर्तियाँ हैं। उस अलमारी में ताल्लपाक कवियों की सभी रचनाओं के ताम्रपत्र रखे हुए हैं। साथ–साथ मंदिर की दीवारों पर स्वर सहित लिखवाया था।

अन्नमाचार्य प्रकांड पंडित थे। वे संस्कृत व देशी तेलुगु दोनों में संकीर्तन लिखने में कुशल थे। इनके संकीर्तन अध्यात्म और श्रृंगार नामक दो प्रकार के हैं। अन्नमाचार्य के पौत्र चिन्नन्ना के अनुसार

अन्नमाचार्य ने पहले श्रृंगार एवं पश्चात् अध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। संकीर्तनों को विषय–वस्तु के अनुसार, गाने की विधि के अनुसार एवं भाषा के अनुसार वर्गीकरण कर सकते है।

प्रत्येक पद में पल्लवि (टेक) और अनुपल्लवि दोनों प्राप्त होते हैं। उनके संकीर्तनों में जैसा कि ऊपर के वर्गीकरण में दिया गया है, लोकगीतों की सभी शैलियाँ मिलती हैं।

प्रस्तुत लेख में अन्नमाचार्य के श्रृंगार संकीर्तनों पर विहंगम दृष्टि डाली गयी है।

अन्नमाचार्य के प्राप्त संकीर्तनों में अधिकांश श्रृंगार संकीर्तन ही हैं। (लगभग पन्द्रह हजार प्राप्त हुए जिनमें से तेरह हजार श्रुंगार संकीर्तन है।) इन संकीर्तनों में श्रृंगार के सभी अंगों का सूक्ष्म वर्णन, जैसे– संयोग और वियोग, नायक, नायिका उनके हवा–भाव आदि का हुआ है।

इनके श्रृंगार संकीर्तनों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए श्री गौरिपेद्दि रामसुब्ब शर्माजी कहते हैं – "गुरुओं से सीखे दार्शनिक विचार, आल्वारों की कथायें, नारद और शांडिल्य आदि भक्ति सूत्रों में चर्चित गोपिकाओं की भक्ति, अन्नमाचार्य के सामने आदर्श थे। इनके साथ–साथ भगवत और विष्णु पुराण के आधार पर कहीं–कहीं कवि ने अनपढों का भी श्रृंगार वर्णन किया है, जो भाव आल्वारों में नहीं गोचर होते हैं।" वेंकटेश्वर दक्षिण नायक हैं। वे तो श्रृंगार के नव–सावयव–साकार रूप हैं। उनके दक्षिण नायकत्व का वर्णन कवि नायिका से इस प्रकार कहलवा रहे हैं – "मैं तो तुम्हारे गुणों को अच्छी तरह जानती हूँ। थोड़ी सी छूट दे दी तो तुम लता के समान फैल जाते हो। गोपिकाओं से विवाह किया, अन्य कई कामिनियों से मिलन होकर अब मुझसे विवाह किया है।" नायक के विरह का भी वर्णन स्थान–स्थान पर हुआ है। नायक सखियों से कहता है कि मुझे तुम्हारे उपचारों की आवश्यकता नहीं, मेरी प्रियतमा से मिलन चाहिए। अतः तुम उससे मुझे मिलाओ। कवि स्वयं नायिका या सखी या दूती बन जाता है। आदि दम्पति अलमेलमंगा और वेंकटेश्वर का श्रृंगार संसार के आदर्श ही नहीं, वरन् जगत् कल्याणकारी भी है। इनका विरह जीवात्मा और परमात्मा का विरह है। यद्यपि सम्पूर्ण पद में विरह का वर्णन होने पर भी अन्नमाचार्य अन्त में वेंकटेश्वर की मुद्रा के साथ नायिका–नायक का मिलन करवाना उनकी अपनी विशेषता है। इन संकीर्तनों में विभिन्न प्रकार की नायिकायें – स्वकीया, दिव्या, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, धीरा, आदि के साथ–साथ वासकसज्जा, अभिसारिका, कलहांतरिता, खंडिता आदि अष्टविधि नायिकाओं का विस्तृत चित्रण है। इतना ही नहीं पद्मिनी, शंखिणी, हस्तिनी और चित्रिणी जाति की नायिकाओं का भी वर्णन इन्होंने किया है। जैसे एक ही पद में चारों का वर्णन–

(सभी जातियों की नायिका वही लग रही है।)

अन्नमाचार्य के श्रृंगार संकीर्तनों के नायक श्री वेंकटेश्वर होने पर भी उन्होंने श्री कृष्ण से अभिन्न ही माना गया है। अन्नमाचार्य की नायिका सहज सुन्दरी और सुकुमारी है। वह अपने अंग प्रत्यंग रूपी फूलों से ही अपने पति वेंकटेश्वर की पूजा करती है –

नायिका के वीक्षण मात्र से कमल दलों से पूजा हो जाती है। मंद मुसकान से ही कुंद कुसुमों की अर्चा होती है। उंसास छोड़ने से चम्पा पुष्पों से पूजा।

इस दिव्य सौन्दर्य की मूर्ति नायिका को सौन्दर्य के प्रसाधनों की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि उसका मुख ही दर्पण है जिसमें वेंकटेश्वर अपने आपको देख सकते हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है इस कारण आभूषणों की भी आवश्यकता नहीं है। मुस्कुराने से मोती और रूठ जाने पर माणिक्य बिखरते हैं। इस नायिका को पाकर वेंकटेश्वर स्वयं ''लखपति'' बन गये हैं। एक अन्य स्थान पर कवि सखियों के द्वारा लक्ष्मी के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार से करवा रहे हैं–

"चूडरम्मा चेलुलार सुदति चक्कदनालु"

अर्थात् नायिका का जन्म क्षीरसागर में होने के कारण उसका मुख चन्द्रमा के समान होने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि चन्द्रमा स्वयं उसका भाई है। मन्दहास अमृत जैसा है क्योंकि अमृत उसके मायके का धन है। इसके गुण क्षीर सागर के ही समान हैं। इसके पांव कल्पतरु के किसिलय के समान होना भी कोई विशेष बात नहीं क्योंकि वह कल्पतरु भी उसके आंगन का ही है।

कुछ संकीर्तनों में नायक और नायिका के ''काम यज्ञ'' का वैदिक होम प्रक्रिया के अनुसार विस्तार पूर्वक वर्णन है – नायिका यज्ञ कर रही है – अपने प्यार को देवताओं की प्रीति के लिए अर्पित कर रही है। पान खाने से जो रस निकलता है वही सोमपान है। सुन्दर कंठ ध्वनि ही वेद मंत्र हैं। विरहाग्नि ही होमाग्नि है। पसीना ही व्रत के समय करने वाला स्नान है। श्री वेंकटेश्वर के साथ मिलन ही दिव्य भोग है। इसी प्रकार का वर्णन नायक के प्रति भी है। कई संकीर्तन नायक और नायिका के दिव्य सौन्दर्य से भरे प्राप्त होते हैं।

"अतिव जव्वनमु रायलकु बेट्टिनकोट
पति मदन सुख राज्य भारंबु निलुपु।"

इस पद में कवि कहते हैं कि – नायिका का सौन्दर्य सहज दुर्ग है, उसमें नायक वेंकटेश्वर अपने मदन–साम्राज्य का भार सुख से संभालते हैं। नायिका की दृष्टि मेघ–मध्यगत तड़ित रेखा सी है, जो नायक के दिल का अंधेरा दूर करती है। उसका मुख चन्द्रमा ही है और इसीलिए नायक के नैन–कुमुद नित्य

प्रफुल्लित रहते हैं। नायक को एकान्त स्थान ढूँढ़ने का कष्ट है ही नहीं, क्योंकि नायिका का केश कलाप खुद अंधेरा फैलाता है। नायिका की बाहु लताएँ प्रभु वेंकटपति की प्रणयलता से लिपट कर विहार कुंज का स्वयं संपादन करती हैं।

अन्नमाचार्य के कोमल भावों का सुन्दर उदाहरण देखिए–

"कुलुकुचु नडवरोयम्मलाला" इस संकीर्तन में कवि ने नववधु अलमेल मंगा की पालकी को कहार पुरुषों के नहीं कोमलियों के हाथ दिया है। हँसी मजाक में जब वे तेजी से चलने लगीं तो वधु कांपने लगी। वधु के फूल बिखरने लगे। यह कवि से देखा न गया। अतः उन कहारों से अनुरोध करते हैं कि अरे! धीरे–धीरे चलो। देखो उसके मांग का चन्दन सारे शरीर पर बिखर गया है, कंकणों के हिलने के कारण उसके कोमल हाथ लाल हो गये हैं। एक स्थान पर कवि रूठी नायिका से प्रेम आरोगने के लिए मिन्नतें कर रहे हैं क्योंकि नायिका के चित्त को भूख लगी है।

निष्कर्षः

अन्त में श्री राल्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा जी से हम भी सहमत हैं "अन्नमाचार्य के संकीर्तन सारस्वत क्षीर सागर है। भक्ति और श्रृंगार में स्वतंत्र सन्निवेश, भाव ही नहीं स्वच्छ देशी और ग्रंथिक भाषाओं के सम्मिश्रण से रसिक और सहृदयों को आनन्द पहुँचाते हैं।"

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. आर. सुमनलता, अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद– 1989

2. डॉ. वेटूरि आनंदमूर्ति, ताल्लपाक कवुल कृतुलु, विविध साहिती प्रक्रियलु (तेलुगु), श्रीनिवास विजयनगर कालोनी, हैदराबाद– 1974

3. डॉ. एम. संगमेशम, अन्नमाचार्या और सूरदास का संस्कृतिक अध्ययन, ति.ति.दे. 1983

4. ताल्लपाक साहित्यमु आध्याम, श्रृंगार संकीर्तनमु (विभिन्न संकलन), ति.ति.दे. प्रकाशन 1980–81

5. पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु, तेलुगुलो पदकवितलु, आंध्र सारस्वत परिषद, हैदराबाद– 1973

एक पैकेट मूंगफली

पिछली सर्दियों की बात है। नवंबर का महीना था, मौसम कुछ खास अच्छा नहीं था। मुझे देहरादून से बरैली जाना था। मेरी ट्रैन टिकट कन्फर्म थी। 18 :20 की ट्रैन थी देहरादून से। दो दिन पहले ही मैंने टिकट बुक किया था तो मुझे याद था। सामान वगैरह सब पैक कर रखा था लेकिन न जाने कैसे मैं 18:20 की जगह 8 :20 याद कर बैठी। मेरे घर से स्टेशन लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर था। ठीक 7 बजे मैंने ऑटो बुक किया, जैसे ही ऑटो आया, सामान रखा और पहुंच गयी स्टेशन। जैसे ही स्टेशन में प्रवेश किया सामने बोर्ड पर अपनी ट्रैन के नाम, नंबर और प्लेटफार्म का इंतज़ार करने लगी। 10 मिनट हो गए। मुझे टेंशन होने लगी। पूछताछ काउंटर पर बहुत भीड़ थी लेकिन फिर भी मैंने हिम्मत की और जाकर पूछ बैठी। मैडम वो 8:20 वाली बरैली की ट्रैन कौन से प्लेटफार्म पर आएगी। मैडम लगभग तिलमिलाते हुए बोली – अभी कोई ट्रैन नहीं है, 2 घंटे पहले ही एक गयी है। अगली रात को 11:50 पर है।

ओह !! मेरा मुँह खुला का खुला रह गया। जल्दी से टिकट निकला और टाइम देखा। अरे, यह तो 18:20 था मतलब 6:20 शाम को। अब क्या करूँ, जाना भी जरुरी है, कल एग्जाम है।

चलो कोई नहीं, एक और ऑटो बुक किया और पहुंच गयी – बस स्टैंड। मुझे याद था 8:20 पर देहरादून से बरैली की सीधी बस जाती है। बस खड़ी थी, तुरंत अंदर गयी और सीट ले ली। साफ़ सुथरी बस थी। कहीं कहीं कुछ पॉलिथीन और कुछ भुट्टे के टुकड़े पड़े थे लेकिन फिर भी काफी हद तक साफ़ ही थी।

आधी रात को बस एक ढाबे पर खाना खाने के लिए रुकी। रात के 11:30 बज रह थे। ढाबे पर खाना तो अच्छा नहीं मिलेगा यही सोच कर में एक कोल्ड ड्रिंक और चिप्स का पैकेट ले आई। अपनी सीट पर बैठ कर खाने लगी।

थोड़ी देर में मैंने अपनी खिड़की से एक मूंगफली का ठेला देखा। गरम गरम मूंगफली एक जलती हुई मटकी के नीचे से अच्छी लग रही थी। मन हुआ कि मूंगफली खाई जाई। उतरी और झट से 10 रुपये की मूंगफली ले आई। लेकिन यह क्या, जैसे ही बस में चढ़ी, मुझे लगा मूंगफली तो ले ली लेकिन खाउंगी कैसे। क्यूंकि इनको खाने में तो बहुत कूड़ा होगा। अच्छी खासी साफ़ सुथरी बस गन्दी हो जायेगी। तभी एक विचार आया। अगर चिप्स का पैकेट ख़तम कर लूं तो उसमे मूगफली के छिलका डाल सकती हूँ।

जल्दी जल्दी चिप्स खाने लगी। जैसे ही चिप्स का पैकेट ख़तम हुआ, उसको अपनी गोद में रखा और लगी मूंगफली छीलने। खाने में मजा आ रहा था।

थोड़ी देर में ड्राईवर और कंडक्टर भी आ गए। और गाडी ढाबे से निकल गयी। मैंने नोटिस किया कि मेरी सीट के पीछे बैठी हुई आंटी और उनकी बेटी भी मूंगफली खा रहे थे। कोतुहल बस मैंने जानना चाहा कि वो कहीं छिलका बस में फ़ेंक कर बस गन्दी तो नहीं कर रहे। लेकिन नीचे तो कोई छिलका नहीं था।

हलके से सीट के बीच में से झाँक कर देखा तो वो चार्जिंग पॉइंट के बगल में एक छोटे से बॉक्स में छिलका डाल रही थी।

बहुत देर सोचते रही कि इनको बोलू कि नहीं और फिर मन नहीं माना।

"आंटी, एक बात बोलू, आप बुरा तो नहीं मानेगी" – मैंने बोला।

वो बोली "हाँ, बोलो"

"आंटी, आप जो मूंगफली के छिलका उस बॉक्स में फेंक रही हो, वो दरअसल फ़ोन रखने के लिए बना है, आप प्लीज उससे गन्दा ना कीजिये। आप चाहे तो में आपको यह चिप्स का पैकेट दी देती हूँ, मैंने भी अपने छिलका इसमें ही रख रही हूँ"

————————————

संपर्क सूत्र

शीतल गुप्ता
पीएच. डी. शोधार्थी
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
खैरताबाद, हैदराबाद
दूरभाष – 9640600018
Email – guptasheetal02@gmail.com

देश–प्रेम (हाइकु)

देश का ध्वज
लहराता शान से
जय जवान ।[1]

देश का मान
कश्मीर रहे ताज
भारती शान ।[2]

सीमा रक्षण
भीषण स्थिति जूझ
जय जवान ।[3]

अपना देश
प्राण अधिक प्रिय
सब अर्पण ।[4]

देश प्रगति
निवासियों का धर्म
आत्मनिर्भर ।[5]

अपनी माटी
सदा गौरवान्वित
सब अर्पण ।[6]

साहित्याकाश

जग में नाम
मातृभूमि सेवक
सदा सम्मान।[7]
अपना काम
स्वयं की जिम्मेदारी
देश प्रगति।[8]
नियत कर्म
सजगतापूर्वक
देश उन्नति।[9]
जज्बा देश का
अपना समर्पण
प्रेरक क्षण।[10]
सेना जवान
वतन हित लक्ष्य
अनुशासन।[11]
शहीद वीर
नमन गुमनाम
नींव की ईंट।[12]

संपर्क सूत्र

डॉ. लूनेश कुमार वर्मा
(व्याख्याता), शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय छछानपैरी
विकास खंड–अभनपुर, जिला रायपुर (छत्तीसगढ़)
मो. 8109249517
luneshverma@gmail.com

बीजयान

प्रलयों से– प्रकंपों से– प्रभंजनों से
अनवरत चलता "बीजयान"
सभ्यताओं का करे "बीजवपन"
नित नयी संस्कृतियों का समागमन!

आशाओं का हल धरे
आशयों के आलाप भरे
व्यग्रता और उग्रताओं की
राहों पर चलते – चलते ,
कभी ऊसरों में – कभी वादियों में
कभी क्यारियों में – कभी मेडियों में
कभी घाटियों में – कभी वाटियों में
अलग– अलग माटियों में
फूटे नवांकुर !
संस्कृतियों के धरोहर !

बीज बोकर अन्न दिये
अन्नदाता की आँखों में
हजारों दीपों की जगमगाहट
कलकल करती जलधाराओं के मंजीर नाद

लाखों वीणा वादनों की झंकार !
पेड–पंछी , टीले और झीलों के

मिलन से प्रकृति
मन– मस्तिष्क और मेधा का
सम्मिलन लाये संस्कृति ,
जो समझे कहलाये बृहस्पति!
हरितमा को साक्ष्य बना
सुरक्षित नये बीजों का खजाना
आगामी पीढियों के लिए महान नज़राना !
हरितमा की चाह – अंकुरों से नेह
संतुलन के प्रति मोह
पाल रही हर नई पीढी
बनती हरितहार की अगली कड़ी !
श्रमजल से सिंचित एक– एक बीज
"बीजाक्षर" बन
हर शाक "शाकंबरी" बन
बर्फ की थरथराहट में
भभकते रेगिस्तान में
कवच बन, निरंतर
रक्षा करता "अन्न सूक्त"!!

संपर्क सूत्र

डॉ. सुमन लता रुद्रावझला

दाम और मोल

लम्बा कद, तन्वंगी काया,
रंग है उसका गोरा।
काले लम्बे बाल है उसके,
दाम बताओ अब अपना।

बेटी मेरी अनपढ़ है,
मुँह पर उसके है ताला,
कठपुतली–सी कहा मानेगी,
दाम बताओ अब अपना।

सोना–चांदी में मोल करूँ,
या दे दूँ जमीन–मकान,
उसके ब्याह में पिस जाऊँगी,
दाम बताओ अब अपना।

दे दहेज भी झुलस गयी,
उस मईया की बिटिया,
अब शायद मईया जाने–
अनमोल थी उसकी बिटिया।

क्यों कर लेते है मोल–भाव?
हम अपनी ही बेटी का–
न जाने इस कुप्रथा ने,

निगली कितनों की बिटिया।

बेटी को मानो वरदान,
दो उसको शिक्षा और सम्मान।
बोझ नहीं अनमोल समझो–
दाम–मोल से उसे न बेचो।

संपर्क सूत्र

गायत्री शर्मा
Bhavans Vivekananda College
Sainikpuri Hyderabad Kendra–500094
B.Sc. Lf.Sc.– MGC III
Ph. No.– 8522097564

साहित्याकाश

भारत की जान हिंदी

अंग्रेजी' दो देशों को जोड़ने वाली तो
'हिंदी' दो दिलो को जोड़ने वाली है ये.....
आपसी द्वेष को भूलकर समझे तो–2
दोनों ही एक घर में बोली जाने वाली है ये....

'अंग्रेजी' डॉक्टर सच्चर कर जान बचाती है तो
'हिंदी' रवि सा कविता कर आशा के द्वीप जलती है ये....
आपसी द्वेष भूलकर समझे तो–2
दोनों ही मानव निर्माण करने वाली है ये.....

'अंग्रेजी' तकनीकी सिखाती है तो
'हिंदी' संस्कार सिखाती है ये....
आपसी द्वेष को बोलकर समझे तो–2
दोनों ही मानव जीवन को सहज बनती हैं ये....

'अंग्रेजी' की चाहत रखने वाले हैं तो
'हिंदी' के दीवाने भी कुछ काम नहीं है ये.....
आपसी द्वेष भूल कर समझे तो –2
दोनों ही चाहत के फसाने है ये.....

साहित्याकाश

'अंग्रेजी' साइंटिस्ट बनती है तो
'हिंदी' शास्त्र ज्ञान बतलाती है ये.....
आपसी द्वेष भूल कर समझे तो–2
दोनों ही ज्ञान की गंगा बहाती हैं ये....

संपर्क सूत्र

सुश्री पुनम
असिस्टेंट प्रोफेसर
चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद
मोबाइल :– 9306308378
Email id: poonam.bidlhan1@gmail.com

साहित्याकाश